आलोचना

: प्रकाशक :
श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट,
सोनगढ-३६४२५० (सौराष्ट्र)

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

भगवानश्रीकुन्दकुन्द-कहानजैनशास्त्रमाला, पुष्प नं. 255

ॐ

नमः सिद्धेभ्यः

आलोचना

: प्रकाशक :

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट,

सोनगढ-३६४२५० (सौराष्ट्र)

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

प्रथम आवृत्ति प्रत : 800 वीर सं. 2543 ई.स. 2017

आलोचना (हिन्दी)के

*** स्थायी प्रकाशन पुरस्कर्ता ***

श्रीमती कंचनबेन विनोदराय कामदार

राजकोट

સહજ ચિદાનંદ.

मूल्य : 10 =00

मुद्रक

स्मृति ऑफसेट

सोनगढ- (सौराष्ट्र)

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६५२५०

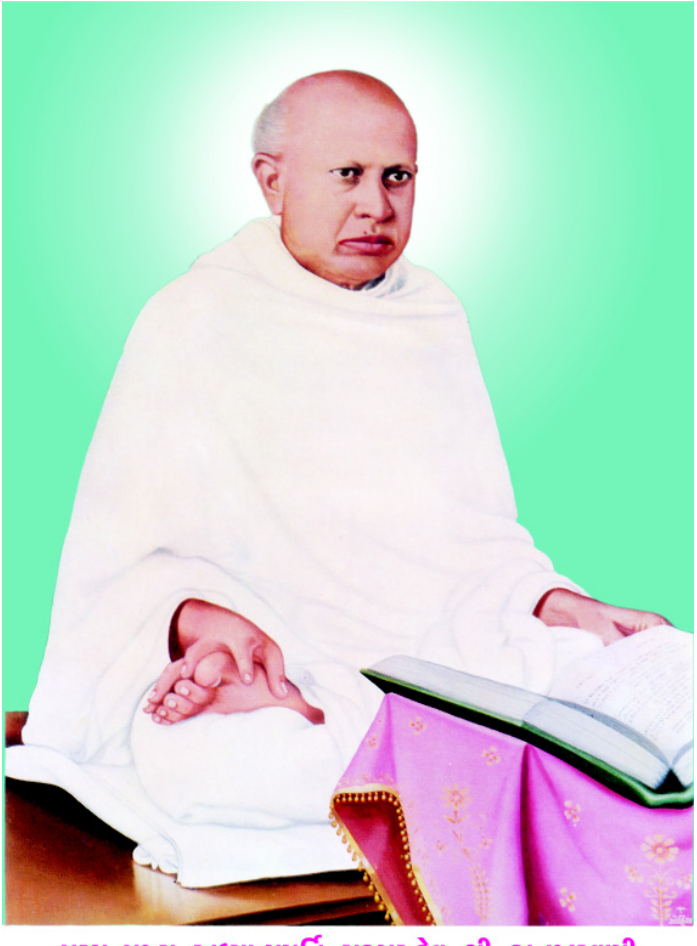

પરમ પૂજ્ય અધ્યાત્મમૂર્તિ સદ્‌ગુરુદેવ શ્રી કાનજીસ્વામી

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

ॐ

श्री पद्मनंदीआचार्यविरचित

आलोचना

(शार्दूलविक्रीडित)

यद्यानन्दविधिं भवन्तममलं तत्त्वं मनोगाहते
त्वन्नामस्मृतिलक्षणो यदि महामन्त्रोऽस्त्यनन्तप्रभः ।
यानं च त्रितयात्मके यदि भवेन्मार्गे भवद्दर्शिते
को लोकेऽत्र सतामभीष्टविषये विघ्नो जिनेश प्रभो ॥१॥

अर्थ :—हे जिनेश हे प्रभो यदि सज्जनोंका मन अंतरंग तथा बहिरंगमलसे रहित होकर तत्त्वस्वरूप तथा वास्तविक आनन्दके निधान आपको अवगाहन (आश्रय) करता है और यदि उनके मनमें आपके नामका स्मरणरूप अनंतप्रभाकाधारी महामंत्र मौजूद है तथा आपसे प्रकट किये हुए सम्यग्दर्शन सम्यक्ज्ञान सम्यक्चारित्ररूपी मोक्षमार्गमें यदि उनका गमन है तो उन सज्जनोंको अभीष्टकी प्राप्तिमें किसी प्रकारका विघ्न नहीं आ सकता।

भावार्थ :—यदि सज्जनोंके मनमें आपका ध्यान

होवे तथा आपका नाम स्मरणरूप महामंत्र मौजूद होवे और यदि वे मोक्षमार्गमें गमन करनेवाले होवे तो उनके अभिलषितकी प्राप्तिमें किसी प्रकारका विघ्न नहीं आ सकता ॥१॥

निःसंगत्वमरागिताथ समता कर्मक्षयो बोधनं
विश्वव्यापि समं दृशा तदतुलानन्देन वीर्येण च ।
ईदृग्देव तवैव संसृति परित्यागाय जातः क्रमः
शुद्धस्तेन सदा भवच्चरणयोः सेवा सतां संमता ॥२॥

अर्थ :—और भी आचार्य स्तुति करते हैं कि हे जिनेन्द्रदेव संसारके त्यागके लिये परिग्रह रहितपना तथा रागरहितपना और समता तथा सर्वथा कर्मोंका नाश और अनंतदर्शन, अनंतसुख और अनंतवीर्यके साथ समस्त लोकालोकको प्रकाश करनेवाला केवलज्ञान ऐसा क्रम आपके ही हुआ था किन्तु आपसे भिन्न किसी देवके यह क्रम नहीं था इसलिये आपही शुद्ध है तथा आपके चरणोंकी सेवा ही सज्जन पुरुषोंको करने योग्य है।

भावार्थ :—आपने ही संसारसे मुक्त होनेके लिये हे भगवन् समस्त परिग्रहका त्याग किया है तथा राग-भावको छोड़ा है और समताको धारण किया है तथा अनन्त विज्ञान अनन्तवीर्य अनन्त सुख और अनंतदर्शन

आपके ही प्रकट हुए हैं इसलिये आप ही शुद्ध तथा सज्जनोंकी सेवाके पात्र हैं॥२॥

यद्येतस्य दृढा मम स्थितिरभूत्त्वत्सेवया निश्चितं
त्रैलोक्येश बलीयसोऽपि हि कुतः संसारशत्रोर्भयम् ।
प्राप्तस्यामृतवर्षहर्षजनकं सद्यन्त्रधारागृहं
पुंसः किं कुरुते शुचौ खरतरो मध्याह्नकालातपः ॥३॥

अर्थ :—हे तीनलोकके ईश यदि मेरे निश्चयसे आपकी सेवामें दृढ़पना है तो मुझे अत्यंत बलवान भी संसाररूपी वैरीका जीतना कोई कठिन बात नहीं क्योंकि जिस मनुष्यने जलके वर्षणसे हर्षको करनेवाले उत्तम फव्वारा सहित घरको प्राप्त कर लिया है उस पुरुषको जेठमासकी अत्यंत तीक्ष्ण भी दुपहरकी धूप कुछ भी नहीं कर सकती।

भावार्थ :—जिस प्रकार फव्वारा सहित उत्तम घरमें बैठे हुये पुरुषको जेठमासकी अत्यंत कठोर भी दुपहरकी धूप कुछ नहीं कर सकती उसीप्रकार यदि मैं निश्चयसे आपकी सेवामें दृढ़ रीतिसे स्थित हूँ तो मुझे बलवान भी संसाररूपी वैरी कुछ भी त्रास नहीं दे सकता॥३॥

यः कश्चिन्निपुणो जगत्त्रयगतानर्थानशेषांश्चिरं
सारासारविवेचनैकमनसा मीमांसते निस्तुषम् ।
तस्य त्वं परमेक एव भगवन् सारो ह्यसारं परं
सर्वं मे भवदाश्रितस्य महती तेनाभवन्निर्वृतिः ॥४॥

अर्थ :—यह पदार्थ सार है और यह असार है इसप्रकार सारासारकी परीक्षामें एकचित्त होकर जो कोई बुद्धिमान मनुष्य तीनोंलोकके समस्त पदार्थोंका बाधारहित गहरी दृष्टिसे विचार करता है उस पुरुषकी दृष्टिमें हे भगवन् आपही एक सारभूत पदार्थ हैं और आपसे भिन्न समस्त पदार्थ असारभूत ही हैं अतः आपके आश्रयसे ही मुझे परम संतोष हुआ है ॥४॥

ज्ञानं दर्शनमप्यशेषविषयं सौख्यं तथात्यन्तिकं
वीर्यं च प्रभुता च निर्मलतरा रूपं स्वकीयं तव ।
सम्यग्योगदृशा जिनेश्वर चिरात्तेनोपलब्धे त्वयि
ज्ञातं किं न विलोकितं न किमथ प्राप्तं न किं योगिभिः ॥५॥

अर्थ :—हे जिनेन्द्र समस्त लोकालोकको एकसाथ जाननेवाला तो आपका ज्ञान है और समस्त लोकालोकको एकसाथ देखनेवाला आपका दर्शन है और आपके अनंत सुख और अनंत बल है तथा प्रभुपना भी आपका अतिशयकर निर्मल है और शरीर भी आपका

देदीप्यमान है इसलिये यदि योगीश्वरोंने समीचीन योगरूपी नेत्रसे आपको प्राप्त कर लिया है तो क्या उन्होंने जान न लिया ? और क्या उन्होंने देख न लिया ? तथा क्या उन्होंने पा न लिया ?

भावार्थ :—यदि योगीश्वरोंने अपनी उत्कृष्ट योगदृष्टिसे अनन्त गुणोंके धारी आपको देख लिया तो उन्होंने सब कुछ देख लिया और सब कुछ जान लिया तथा प्राप्त कर लिया ॥५॥

त्वामेकं त्रिजगत्पतिं परमहं मन्ये जिनं स्वामिनं
त्वामेकं प्रणमामि चेतसि दधे सेवे स्तुवे सर्वदा।
त्वामेकं शरणं गतोऽस्मि बहुना प्रोक्तेन किंचिद्भवे-
दित्थं तद्भवतु प्रयोजनमतो नान्येन मे केनचित् ॥६॥

अर्थ :—हे जिनेन्द्र ! आपको ही मैं तीनलोकका स्वामी मानता हूँ और आपको ही अष्टकर्मोंका जीतनेवाला तथा अपना स्वामी मानता हूँ और केवल आपको ही भक्तिपूर्वक नमस्कार करता हूँ सदा आपका ही ध्यान करता हूँ तथा आपकी ही सेवा और स्तुति करता हूँ और केवल आपको ही मैं अपना शरण मानता हूँ अधिक कहनेसे क्या ? यदि कुछ संसारमें प्राप्त होवे तो यही होवे कि आपके सिवाय अन्य किसीसे भी मेरा प्रयोजन न रहे।

भावार्थ :—हे भगवान् आपसे ही मेरा प्रयोजन रहे आपसे भिन्न अन्यसे मेरा किसी प्रकारका प्रयोजन न रहे यह विनयपूर्वक प्रार्थना है ।।६।।

पापं कारितवान् यदत्र कृतवानन्यैः कृतं साध्विति
भ्रान्त्याहं प्रतिपन्नवांश्च मनसा वाचा च कायेन च ।
काले संप्रति यच्च भाविनि नवस्थानोद्वतं यत्पुन-
स्तन्मिथ्याखिलमस्तु मे जिनपते स्वं निन्दतस्ते पुरः ।।७।।

अर्थ :—हे जिनेश्वर भूतकालमें जो पाप मैंने भ्रमसे मनवचनकायके द्वारा दूसरोंसे कराये हैं तथा स्वयं किये हैं और दूसरोंको पाप करते हुए अच्छा कहा है तथा उसमें अपनी सम्मति दी है और वर्तमानमें जो पाप मैं मनवचनकायके द्वारा करवाता हूँ तथा स्वयं करता हूँ और अन्यको करते हुये भला कहता हूँ और भविष्यत्कालमें जो मैं मनवचनकायसे पाप कराऊँगा तथा स्वयं करूँगा और दूसरेको करते हुवे अच्छा मानूंगा वे समस्त पाप आपके सामने अपनी निन्दा करनेवाले मेरे सर्वथा मिथ्या हो ।।

भावार्थ :—भूत भविष्यत् वर्तमान तीनोंकालोंमें जिन पापोंका मैंने मनवचनकाय तथा कृतकारित-अनुमोदनासे उपार्जन किया है तथा करूँगा और करता हूँ उन समस्त पापोंका अनुभवकर हे जिनेश्वर मैं आपके

सामने अपनी निन्दा करता हूँ इसलिये वे समस्त पाप मेरे मिथ्या हो ।।७।।

लोकालोकमनन्तपर्ययुतं कालत्रयीगोचरं
त्वं जानासि जिनेन्द्र पश्यसि तरां शश्वत्समं सर्वतः ।
स्वामिन् वेत्सि ममैकजन्मजनितं दोषं न किंचित्कुतो
हेतोस्ते पुरतः स वाच्य इति मे शुद्ध्यर्थमालोचितम् ।।८।।

अर्थ :—हे जिनेन्द्र यदि तुम भूत भविष्यत् वर्तमान तीनोंकालोंके गोचर नाना पर्यायों सहित लोक तथा अलोकको चारों ओरसे एक साथ जानते हो तथा देखते हो तो हे स्वामिन् मेरे एक जन्ममें होनेवाले पापोंको क्या तुम नहीं जानते हो ? अर्थात् अवश्य ही जानते हो इसलिये अपनेको स्वयं निंदता हुआ जो मैं आपके सामने अपने दोषोंका कथन (आलोचन) करता हूँ सो केवल शुद्धिके लिये ही करता हूँ।

भावार्थ :—हे भगवन् जब तुम अनंतभेदसहित लोक तथा अलोकको एकसाथ जानते हो तथा देखते हो तो आप मेरे समस्त दोषोंको भी भलीभांति जानते हो फिर भी जो मैं आपके सामने अपने दोषोंका कथन (आलोचन) करता हूँ सो केवल आपको सुनानेके लिये नहीं किन्तु शुद्धिके लिये ही करता हूँ।।८।।

आश्रित्य व्यवहारमार्गमथवा मूलोत्तराख्यान् गुणान्
साधोर्धारयतो मम स्मृतिपथप्रस्थायि यद्दूषणम् ।
शुद्ध्यर्थं तदपि प्रभो तव पुरः सज्ञोऽहमालोचितुं
निःशल्यं हृदयं विधेयमजडैर्भव्यैर्यतः सर्वथा ॥९॥

अर्थ :—व्यवहारनयका आश्रय करनेवाले और मूलगुण तथा उत्तरगुणोंको धारण करनेवाले मुझ मुनिको जिस दूषणका भलीभांति स्मरण है उस दूषणकी शुद्धिके अर्थ आलोचना करनेके लिये हे प्रभो! हे जिनेन्द्र! मैं आपके सामने सावधानीसे बैठा हुआ हूँ क्योंकि ज्ञानवान भव्यजीवोंको सदा अपना मन माया मिथ्या निदान इन तीनों शल्योंकर रहित ही रखना चाहिये ॥९॥

सर्वोऽप्यत्र मुहुर्मुहुर्जिनपते लोकैरसंख्यैर्मित-
व्यक्ताव्यक्तविकल्पजालकलितः प्राणी भवेत् संसृतौ ।
तत्तावद्भिरयं सदैव निचितो दोषैर्विकल्पानुगैः
प्रायश्चित्तमियत् कुतः श्रुतगतं शुद्धिर्भवत्संनिधेः ॥१०॥

अर्थ :—हे भगवन् ! इस संसारमें समस्त जीव बारंबार असंख्यातलोक प्रमाण प्रकट तथा अप्रकट नाना प्रकारके विकल्पोंकर सहित है और जितने विकल्पोंकर सहित ये जीव हैं उतने ही नाना प्रकारके दुःखोंकर सहित

भी हैं किन्तु जितने विकल्प हैं उतने प्रायश्चित्त शास्त्रमें नहीं हैं इसलिये उन समस्त लोकप्रमाण विकल्पोंकी शुद्धि आपके पासमें ही होती है।

भावार्थ :—यद्यपि दूषणोंकी शुद्धि प्रायश्चित्तके करनेसे भी होती है किन्तु हे भगवन् जितने दूषण हैं उतने प्रायश्चित्त, शास्त्रमें नहीं कहे गये हैं इसलिये समस्त दूषणोंकी शुद्धि आपके समीपमें ही होती हैं॥१०॥

भावान्तःकरणेन्द्रियाणि विधिवत्संहृत्य बाह्याश्रया-
देकीकृत्य पुनस्त्वया सह शुचिज्ञानैकसन्मूर्तिना।
निःसंगः श्रुतसारसंगतमतिः शान्तो रहः प्राप्तवान्
यस्त्वां देव समीक्षते स लभते धन्यो भवत्संनिधिम् ॥११॥

अर्थ :—हे भगवन्! समस्त प्रकारके परिग्रहोंसे रहित और समस्त शास्त्रोंका जाननेवाला तथा क्रोधादिकषायोंसे रहित और एकान्तवासी जो भव्यजीव समस्त बाह्यपदार्थोंसे मन तथा इन्द्रियोंको हटाकर तथा अखंड और निर्मल सम्यग्ज्ञानरूपी मूर्तिके धारी आपमें स्थिरकर आपको देखता है वह मनुष्य आपकी समीपताको प्राप्त होता है।

भावार्थ :—जबतक मन तथा इन्द्रियका व्यापार

बाह्यपदार्थोंमें लगा रहता है तबतक कोई भी मनुष्य आपके स्वरूपको प्राप्त नहीं कर सकता किन्तु जो मनुष्य मन तथा इन्द्रियोंको बाह्य पदार्थसे हटा लेता है वही वास्तविक रीतिसे आपके स्वरूपको देख तथा जान सकता है इसलिये जिस मनुष्यने समस्त प्रकारके परिग्रहोंसे रहित होकर तथा शास्त्रोंका भलीभांति ज्ञाता होकर और शान्त तथा एकान्तवासी होकर मन तथा इन्द्रियोंको बाह्य पदार्थोंसे हटाकर तथा आपको स्वरूपमें लगाकर आपको देख लिया है उसी मनुष्यने आपके समीपपनेको प्राप्त किया है ऐसा भलीभांति निश्चित है ॥११॥

त्वामासाद्य पुरा कृतेन महता पुण्येन पूज्यं प्रभुं
ब्रह्माद्यैरपि यत्पदं न सुलभं तल्लभ्यते निश्चितम् ।
अर्हन्नाथ परं करोमि किमहं चेतो भवत्संनिधा-
वद्यापि ध्रियमाणमप्यतितरामेतद्बहिर्धावति ॥१२॥

अर्थ :—पूर्वभवमें कष्टसे संचय किये हुये बड़े भारी पुण्यसे जिस मनुष्यने हे भगवन् ! तीनलोकके पूजनीक आपको पा लिया है उस मनुष्यको उस उत्तमपदकी प्राप्ति होती है जिसको निश्चयसे ब्रह्मा विष्णु आदि भी नहीं पा सकते परन्तु हे अर्हज्जिनेन्द्र तथा हे नाथ मैं क्या करूँ ? आपके समीपमें लगाया हुवा भी मेरा चित्त

प्रबल रीतिसे बाह्यपदार्थोंकी ओर ही दौड़ता है।

भावार्थ :—सहसा यदि कोई मनुष्य चाहे कि मैं आपको प्राप्त कर लूं वह स्वप्नमें भी नहीं कर सकता किन्तु पूर्वमें संचय किये हुए बड़े भारी पुण्यसे ही आपकी प्राप्ति होती है इसलिये हे भगवन् जिस मनुष्यने आपको प्राप्त कर लिया है उस मनुष्यको उस उत्तमपदकी प्राप्ति होती है जिस पदको ब्रह्मा विष्णु आदिके भक्तोंकी तो क्या बात ? स्वयं ब्रह्मा विष्णु भी प्राप्त नहीं कर सकते। किन्तु हे जिनेन्द्र ! इन समस्त बातोंको जानता हुआ भी मेरा चित्त आपके समीपमें लगाया हुआ भी बाह्य पदार्थोंमें दौड़-दौड़ कर जाता है यह बड़ा खेद है॥१२॥

संसारो बहुदुःखदः सुखपदं निर्वाणमेतत्कृते
त्यक्त्वार्थादि तपोवनं वयमितास्तत्रोज्झितः संशयः।
एतस्मादपि दुष्करव्रतविधेर्नाद्यापि सिद्धिर्यतो
वातालीतरलीकृतं दलमिव भ्राम्यत्यदो मानसम् ॥१३॥

अर्थ :—हे जिनेश ! यह संसार तो नाना प्रकारके दुःखोंका देनेवाला है और वास्तविक सुखका स्थान अथवा वास्तविक सुखका देनेवाला मोक्ष हैं इसलिये उसी मोक्षकी प्राप्तिके लिये हमने समस्त धनधान्य आदि परिग्रहोंका त्याग किया और हम तपोवनको भी प्राप्त हुए तथा हमने

समस्त प्रकारका संशय छोड़ दिया तथा अत्यंत कठिन व्रत भी धारण किये किन्तु अभीतक उन कठिन व्रतोंके धारण करनेसे भी सिद्धि नहीं हुई क्योंकि पवनके समूहसे कपाये हुए पत्तेके समान हमारा मन रातदिन बाह्यपदार्थोंमें भ्रमण करता रहता है ॥१३॥

झम्पाः कुर्वदितस्ततः परिलसद्बाह्यार्थलाभाद्दद-
न्नित्यं व्याकुलतां परां गतवतः कार्यं विनाप्यात्मनः ।
ग्रामं वासयदिन्द्रियं भवकृतो दूरं सुहृत् कर्मणः
क्षेमं तावदिहास्ति कुत्र यमिनो यावन्मनो जीवति ॥१४॥

अर्थ :—हे भगवन् ! जो मन बाह्यपदार्थोंको मनोहर मानकर उनकी प्राप्तिके लिये जहाँ तहाँ भटकता है और जो ज्ञानस्वरूपी आत्माको बिना प्रयोजन सदा अत्यंत व्याकुल करता रहता है तथा जो इन्द्रियरूपी गाँवको बसानेवाला है अर्थात् इस मनकी कृपासे ही इन्द्रियोंकी विषयोंमें स्थिति होती है और जो संसारके पैदा करनेवाले कर्मोंका परममित्र है अर्थात् आत्मारूपी घरमें सदा कर्मोंको लाता रहता है ऐसा मन जबतक जीवित रहता है तबतक मुनियोंको कदापि कल्याणकी प्राप्ति नहीं हो सकती।

भावार्थ :—जबतक आत्मामें कर्मोंका आवागमन लगा रहता है तबतक आत्मा सदा व्याकुल ही बना रहता है वे कर्म आत्मामें मनके द्वारा लाये जाते हैं क्योंकि मनके सहारेसे ही इन्द्रियाँ रूप आदिको देखनेमें प्रवृत्त होती है तथा रूप आदिको देखनेसे राग-द्वेष उत्पन्न होते हैं फिर उनसे ज्ञानावरण आदि द्रव्यकर्मोंकी उत्पत्ति होती है इसलिये उनकर्मोंके सम्बन्धसे आत्मा सदा व्याकुल ही रहता है और जब आत्मा ही व्याकुल रहा तब मुनियोंको कल्याणकी प्राप्ति कैसे हो सकती है इसलिये कल्याणका रोकनेवाला मन ही है ॥१४॥

नूनं मृत्युभुपैति यातममलं त्वां शुद्धबोधात्मकं
त्वत्तस्तेन बहिर्भ्रमत्यविरतं चेतो विकल्पाकुलम् ।
स्वामिन् किं क्रियते ऽत्र मोहवशतो मृत्योर्न भीः कस्य तत्
सर्वानर्थपरंपराकृदहितो मोहः स मे वार्यताम् ॥१५॥

अर्थ :—निर्मल तथा अखंडज्ञानस्वरूप आपको पाकर मेरा मन मृत्युको प्राप्त हो जाता है इसलिये हे जिनेन्द्र ! नानाप्रकारके विकल्पोंकर युक्त मेरा चित्त आपसे बाह्य समस्त पदार्थोंमें ही निरन्तर घूमता फिरता है क्या किया जाय ? क्योंकि मृत्युसे सर्व ही डरते हैं अतः यह सविनय प्रार्थना है कि समस्त प्रकारके अनर्थोंको

करनेवाले तथा अहितकारी इस मेरे मोहको नष्ट करो।

भावार्थ :—जबतक मोहका सम्बन्ध आत्माके साथ रहेगा तबतक चित्त मेरा तेरा करनेसे बाह्यपदार्थोंमें घूमता ही रहेगा और जबतक चित्त घूमता रहेगा तबतक सदा आत्मामें कर्मोंका आवागमन लगा ही रहेगा तथा इस रीतिसे आत्मा सदा व्याकुल ही रहेगा इसलिये हे भगवन् इस सर्वथा नानाप्रकारके अनर्थोंके करनेवाले मेरे मोहको नष्ट करो जिससे मेरी आत्माको शान्ति मिले॥१५॥

मोह ही समस्तकर्मोंमें बलवान है इस बातको आचार्य दिखलाते हैं॥

सर्वेषामपि कर्मणामतितरां मोहो बलीयानसौ
धत्ते चञ्चलतां बिभेति च मृतेस्तस्य प्रभावान्मनः।
नो चेज्जीवति को म्रियेत क इह द्रव्यत्वतः सर्वदा
नानात्वं जगतो जिनेन्द्र भवता दृष्टं परं पर्ययैः॥१६॥

अर्थ :—ज्ञानावरण आदि समस्त कर्मोंके मध्यमें मोह ही अत्यंत बलवान कर्म है और इसी मोहके प्रभावसे यह मन जहां तहां चंचल होकर भ्रमण करता है और मरणसे डरता है यदि यह मोह न होवे तो निश्चयनयसे न तो कोई जीवे और न कोई मरे, क्योंकि आपने जो इस

जगतको अनेक प्रकार देखा है वह पर्यायार्थिकनयकी अपेक्षासे ही देखा है द्रव्यार्थिकनयकी अपेक्षासे नहीं इसलिये हे भगवन् इस मेरे मोहको ही सर्वथा नष्ट कीजिये ।।१६।।

वातव्याप्तसमुद्रवारिलहरीसंघातवत्सर्वदा
सर्वत्र क्षणभङ्गुरं जगदिदं संचिन्त्य चेतो मम ।।
संप्रत्येतदशेषजन्मजनकव्यापारपारस्थितं
स्थातुं वाञ्छति निर्विकारपरमानन्दे त्वयि ब्रह्मणि ।।१७।।

अर्थ :—पवनकर व्याप्त ऐसा जो समुद्र उसकी जो जललहरी उनके समूहके समान सर्वकाल तथा सर्व क्षेत्रोंमें यह जगत क्षणभरमें विनाशीक है ऐसा भलीभांति विचारकर यह मेरा मन इस समय हे जिनेन्द्र ! समस्त संसारके उत्पन्न करनेवाले जो व्यापार उनसे रहित होकर निर्विकार परमानन्दस्वरूप परब्रह्म जो आप हैं सो आपमें ही ठहरनेकी इच्छा करता हैं।।१७।।

एनः स्यादशुभोपयोगत इतः प्राप्नोति दुःखं जनो
धर्मः स्याच्च शुभोपयोगत इतः सौख्यं किमप्याश्रयेत् ।
द्वन्द्वं द्वन्द्वमिदं भवाश्रयतया शुद्धोपयोगात्पुन-
र्नित्यानन्दपदं तदत्र च भवानर्हन्नहं तत्र च ।।१८।।

अर्थ :—जिस समय अशुभ उपयोग रहता है उस समय तो पापकी उत्पत्ति होती है तथा उस पापसे जीव नानाप्रकारके दुःखोंको प्राप्त होते हैं और जिस समय शुभ उपयोग रहता है उस समय धर्म (पुण्य)की उत्पत्ति होती है तथा धर्मसे जीवोंको सुख मिलता है और ये दोनों पापपुण्यरूपी द्वन्द्व संसारके ही कारण हैं अर्थात् इन दोनोंसे सदा संसार ही उत्पन्न होता रहता है किन्तु शुद्धोपयोगसे अविनाशी तथा आनन्दस्वरूप पदकी प्राप्ति होती है और हे जिनेन्द्र आप तो उस पदमें निवास करते हैं तथा मैं शुद्धोपयोगरूपी पदमें निवास करता हूँ।

भावार्थ :—उपयोगके तीन भेद हैं पहला अशुभोपयोग दूसरा शुभोपयोग तीसरा शुद्धोपयोग। उनमें आदिके जो दो उपयोग हैं उनसे तो संसारमें ही भटकना पड़ता है क्योंकि जिस समय जीवोंका उपयोग अशुभ होगा उस समय उनको पापका बंध होगा तथा पापके बंध होनेसे उनको नानाप्रकारकी खोटी-खोटी गतियोंमें भ्रमण करना पड़ेगा और जिस समय उपयोग शुभ होगा उस शुभयोगकी कृपासे उनको राजा–महाराजा आदि पदोंकी प्राप्ति होगी इसलिये वह भी संसारको ही बढ़ानेवाला है किन्तु जिस समय उस शुद्धोपयोगकी प्राप्ति होगी उस समय संसारकी

प्राप्ति नहीं हो सकती किन्तु निर्वाणकी ही प्राप्ति होगी इसलिये हे भगवन् ! मैं शुद्धोपयोगमें ही स्थित रहना चाहता हूँ।।१८।।

यन्नान्तर्न बहिः स्थितं न च दिशि स्थूलं न सूक्ष्मं पुमान्
नैव स्त्री न नपुंसकं न गुरुतां प्राप्तं न यल्लाघवम् ।
कर्मस्पर्शशरीरगन्धगणनाव्याहारवर्णोज्झितं
स्वच्छज्ञानदृगेकमूर्ति तदहं ज्योतिः परं नापरम् ।।१९।।

अर्थ :—जो आत्मस्वरूप तेज न तो भीतर स्थित है और न बाहिर स्थित है तथा न दिशामें ही स्थित है और न स्थूल है न सूक्ष्म है तथा आत्मारूपी तेज न तो पुल्लिंग है और न स्त्रीलिंग है तथा नपुंसकलिंग भी नहीं है और न भारी है और न हलका है तथा जो तेज कर्म, स्पर्श, शरीर, गंध, संख्या, वचन वर्णसे रहित है और जो निर्मल है तथा सम्यग्ज्ञान, सम्यक्दर्शनस्वरूप है मूर्ति जिसकी ऐसा है उसी उत्कृष्ट तेजस्वरूप मैं हूँ किन्तु आत्मस्वरूप उत्कृष्ट तेजसे भिन्न नहीं हूँ।।१९।।

एतेनैव चिदुन्नतिक्षयकृता कार्यं विना वैरिणा
शश्वत्कर्मखलेन तिष्ठति कृतं नाथावयोरन्तरम् ।
एषोऽहं स चते पुरः परिगतो दुष्टो ऽत्र निःसार्यतां
सद्रक्षेतरनिग्रहो नयवतो धर्मः प्रभोरीदृशः ।।२०।।

अर्थ :—हे भगवन् चैतन्यकी उन्नतिको नाश करनेवाले और बिना कारण ही सदा वैरी इस दुष्ट कर्मने आपमें तथा मुझमें भेद डाल दिया है किन्तु कर्मशून्य अवस्थामें जैसी आपकी आत्मा है वैसी ही मेरी आत्मा है तथा इस समय यह कर्म और मैं आपके सामने मौजूद है इसलिये इस दुष्टको हटाकर दूर करो क्योंकि नीतिवान् प्रभुओंका यही धर्म है कि वे सज्जनोंकी रक्षा करे तथा दुष्टोंका नाश करे।

भावार्थ :—हे भगवान् ! जिसप्रकार अनन्तविज्ञान अनन्तवीर्य अनन्तसुख तथा अनन्तदर्शन आदिगुण स्वरूप आपकी आत्मा है उसी प्रकार उन्हीं गुणोंकर सहित मेरी भी आत्मा है किन्तु भेद इतना ही है कि आपके तो वे गुण प्रकट हो गये हैं और मेरे उन गुणोंकी प्रकटता नहीं हुई है उस भेदका करनेवाला यह कर्म ही है। क्योंकि कर्मोंकी कृपासे ही उस मेरे स्वभावों पर आवरण पड़ा हुआ है तथा इस समय हम दोनों आपके सामने मौजूद हैं इसलिये इस दुष्टको दूर करो क्योंकि आप तीनोंलोकके स्वामी हैं और नीतिवान् स्वामीका यह धर्म है कि वह सज्जनोंकी रक्षा करै तथा दुष्टोंका नाश करे॥२०॥

आधिव्याधिजरामृतिप्रभुतयः संबन्धिनो वर्ष्मण-
स्तद्भिन्नस्य ममात्मनो भगवतः किं कर्तृमीशा जडाः ।
नानाकारविकारकारिण इमे साक्षान्नभोमण्डले
तिष्ठन्तो ऽपि न कुर्वते जलमुचस्तत्र स्वरूपान्तरम् ॥२१॥

अर्थ :—हे भगवान् ! नानाप्रकारके आकार तथा विकारोंको करनेवाले मेघ आकाशमें रहते हुए भी जिसप्रकार आकाशके स्वरूपका कुछ भी हेरफेर नहीं करते उसीप्रकार आधि, व्याधि, जरा, मरण आदि भी मेरा कुछ नहीं कर सकते क्योंकि ये समस्त शरीरके विकार जड़ हैं तथा मेरी आत्मा ज्ञानवान् और शरीरसे भिन्न है।

भावार्थ :—जिस प्रकार आकाश अमूर्तिक है इसलिये रंगबिरंगे भी मेघ उसके ऊपर कुछ भी अपना प्रभाव नहीं डाल सकते तथा उसके स्वरूपका परिवर्तन नहीं कर सकते। उसी प्रकार आत्मा ज्ञानदर्शनमय अमूर्तिक पदार्थ है इसलिये इस पर भी आधि, व्याधि, जरा, मरण, आदि कुछ भी अपना प्रभाव नहीं डाल सकते क्योंकि ये मूर्तिक शरीरके धर्म हैं और आत्मा शरीरसे सर्वथा भिन्न है॥२१॥

संसारातपदह्यमानवपुषा दुःखं मया स्थीयते
नित्यं नाथ यथा स्थलस्थितिमता मत्स्येन ताम्यन्मनः ।

कारुण्यामृतसंगशीतलतरे त्वत्पादपङ्केरुहे
यावद्देव समर्पयामि हृदयं तावत्परं सौख्यवान् ॥२२॥

अर्थ :—हे भगवन् ! जिसप्रकार जलसे बाहिर स्थलमें बिना पानीके मछली तड़फड़ाती है उसीप्रकार संसाररूपी संतापसे जिसका शरीर जल रहा है ऐसा मैं सदा दुःखित ही रहता हूँ किन्तु जबतक करूणारूपी जलके संगसे जो अत्यंत शीतल हैं ऐसे आपके चरणकमलोंमें मैं अपने मनको लगाता हूँ तबतक मैं अत्यन्त सुखी रहता हूँ॥

भावार्थ :—जिसप्रकार स्थलमें पड़ी हुई मछली दुःखित रहती है उसीप्रकार इस नानाप्रकारके दुःखोंसे भरे हुये संसारमें मैं भी सदा संतप्त रहता हूँ तथा जिसप्रकार मछली जबतक जलके भीतर रहती है तबतक सुखी रहती है उसीप्रकार जबतक मेरा मन करुणारूपी रससे अत्यंत शीतल आपके चरणकमलोंमें प्रविष्ट रहता है तबतक मैं भी सुखी रहता हूँ इसलिये हे भगवन् आपके चरणकमलोंको छोड़कर मेरा मन दूसरी जगह प्रवेश न करे जिससे मैं दुःखी न रहूँ यही प्रार्थना है॥२२॥

साक्षग्राममिदं मनो भवति यद्बाह्यार्थसंबन्धभाक्
तत्कर्म प्रविजृम्भते पृथगहं तस्मात्सदा सर्वथा ।

चैतन्यात्तव तत्तथेति यदि वा तत्रापि तत्कारणं
शुद्धात्मन् मम निश्चयात्पुनरिह त्वय्येव देव स्थितिः ॥२३॥

अर्थ :— हे भगवन् ! इन्द्रियोंके समूहकर सहित जो मेरा मन बाह्यपदार्थोंसे सम्बन्ध करता है उसीसे नाना-प्रकारके कर्म मेरी आत्माके साथ आकर बंधते हैं किन्तु वास्तविक रीतिसे मैं उन कर्मोंसे सर्वकालमें तथा सर्वक्षेत्रमें जुदा ही हूँ तथा आपके चैतन्यसे भी सर्वथा वे कर्म जुदे ही है अथवा उस चैतन्यसे कर्मोंके भेद करनेमें आप ही कारण हैं इसलिये हे शुद्धात्मन् ! हे जिनेन्द्र ! निश्चयसे मेरी स्थिति आपही में है।

भावार्थ :— यदि निश्चयनयसे देखा जावे तो हे जिनेन्द्र ! आप तथा मैं समान ही है क्योंकि निश्चयनयसे आपकी आत्मा भी कर्मबंधकर रहित है तथा मेरी आत्माके साथ भी किसीप्रकार कर्मोंका बंधन नहीं रहता है इसलिये हे भगवन् मेरी स्थिति निश्चयसे आपके स्वरूपमें ही है॥२३॥

किं लोकेन किमाश्रयेण किमुत द्रव्येण कायेन किं
किं वाग्भिः किमुतेन्द्रियैः किमसुभिः किं तैर्विकल्पैरपि।
सर्वे पुद्गलपर्यया बत परे त्वत्तः प्रमत्तो भव-
न्नात्मन्नेभिरभिश्रयस्यतितरामालेन किं बन्धनम् ॥२४॥

अर्थ :—हे आत्मन् न तो तुझे लोकसे काम है और न दूसरेके आश्रयसे काम है तथा न तुझे द्रव्यसे (पैसेसे) प्रयोजन है और न शरीरसे प्रयोजन है तथा तुझे वचन और इन्द्रियोंसे भी कुछ काम नहीं और प्राणोंसे भी प्रयोजन नहीं तथा नानाप्रकारके विकल्पोंसे भी कुछ काम नहीं क्योंकि ये समस्त पुद्गलद्रव्यकी ही पर्यायें हैं और तेरेसे भिन्न है तो भी बड़े खेदकी बात है कि तू इनको अपना मानकर आश्रय करता है सो क्या तू दृढ़ बंधनको प्राप्त नहीं होगा ? अवश्य ही होगा।

भावार्थ :—हे आत्मन् ! तू तो निर्विकार चैतन्यस्वरूपी है और समस्त लोक तथा शरीर, इन्द्रिय, द्रव्य (पैसा) वचन आदि समस्त पदार्थ पुद्गल द्रव्यकी पर्याय है और तुझसे सर्वथा भिन्न है ऐसा होने पर भी यदि तू इनको अपने समझकर आश्रय करेगा तो तू अवश्य ही बंधनको प्राप्त होगा इसलिये इन समस्त पर-पदार्थोंसे ममताको छोड़कर शुद्धानंद चैतन्यस्वरूप आत्माका ध्यान कर जिससे तू कर्मोंसे न बंधे॥२४॥

धर्माधर्मनभांसि काल इति मे नैवाहितं कुर्वते
चत्वारोऽपि सहायतामुपगतास्तिष्ठन्ति गत्यादिषु ।

एकः पुद्गल एव संनिधिगतो नोकर्मकर्माकृति-
वैरी बन्धकृदेष संप्रति मया भेदासिना खण्डितः ॥२५॥

अर्थ :—धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, आकाशद्रव्य, कालद्रव्य ये चारों द्रव्य मेरे किसी प्रकारके अहितको नहीं करते हैं किंतु वे चारों द्रव्य गति, स्थिति आदि कार्मोंमें सहकारी है इसलिये ये मेरे सहायी होकर ही रहते हैं परन्तु नोकर्म (तीन शरीर छह पर्याप्ति) तथा कर्म हैं स्वरूप जिसका ऐसा तथा समीपमें रहनेवाला और बंधका करनेवाला एक पुद्गल ही मेरा वैरी है इसलिये उसीके इस समय मैंने भेदरूपी तलवारसे खंड-खंड उड़ा दिये हैं।

भावार्थ :—मुझसे धर्म, अधर्म, आकाश, काल तथा पुद्गल ये पांच द्रव्य भिन्न हैं उनमेंसे धर्म, अधर्म, आकाश, काल ये चार द्रव्य तो मेरा किसी प्रकार अहित नहीं करते किंतु मेरी सहायता करते हैं अर्थात् धर्मद्रव्य तो मेरे गमनमें सहकारी है तथा अधर्मद्रव्य ठहरनेमें सहकारी है और आकाशद्रव्य मुझे अवकाशदान देता है इसलिये अवकाशदान देनेमें वह भी मुझे सहकारी है और कालद्रव्यसे परिवर्तन होता है इसलिये परिवर्तन करनेमें वह भी सहकारी है परन्तु एक पुद्गलद्रव्य ही मेरे बड़े भारी अहितका करनेवाला है क्योंकि नोकर्म तथा कर्मस्वरूपमें

परिणत होकर पुद्गल द्रव्य मेरे आत्माके साथ बंधको प्राप्त होता है तथा उसकी कृपासे मुझे नानाप्रकारकी गतियोंमें भ्रमण करना पड़ता है और सत्यमार्ग भी नहीं सुझता है इसलिये इससमय भेदविज्ञानसे मैंने उसका खंडन किया है ॥२५॥

रागद्वेषकृतैर्यथा परिणमेद्रूपान्तरैः पुद्गलो
नाकाशादिचतुष्टयं विरहितं मूर्त्या तथा प्राणिनाम् ।
ताभ्यां कर्मघनं भवेदविरतं तस्मादियं संसृति-
स्तस्यां दुःखपरंपरेति विदुषा त्याज्यौ प्रयत्नेन तौ ॥२६॥

अर्थ :—जीवोंके नानाप्रकारके रागद्वेषोंके करनेवाले परिणामोंसे जिसप्रकार पुद्गलद्रव्य परिणमित होता है उसीप्रकार धर्म, अधर्म, आकाश तथा काल ये चार अमूर्तिक द्रव्य रागद्वेषके करनेवाले परिणामोंसे परिणमित नहीं होते तथा उस रागद्वेषके द्वारा प्रबल कर्मोंकी उत्पत्ति होती है और उस कर्मसे संसार होता है तथा संसारमें नानाप्रकारके दुःख भोगने पड़ते हैं इसलिये कल्याणकी अभिलाषा करनेवाले सज्जनोंको चाहिये कि वे राग तथा द्वेषको सर्वथा छोड़ दें।

भावार्थ :—पुद्गलके अनेक परिणाम होते हैं

उनमें रागद्वेषरूप जो पुद्गलके परिणाम हैं उनसे सदा कर्म आत्मामें आकर रहते हैं और उन कर्मोंसे आत्माको – संसारमें घूमना पड़ता है तथा वहाँ पर नाना प्रकारके दुःख सहन करने पड़ते हैं इसलिये भव्यजीवोंको ऐसे परम अहितके करनेवाले रागद्वेषोंका त्याग अवश्य ही कर देना चाहिये ।।२६।।

किं बाह्येषु परेषु वस्तुषु मनः कृत्वा विकल्पान् बहून्
रागद्वेषमयान् मुधैव कुरुषे दुःखाय कर्माशुभम् ।
आनन्दामृतसागरे यदि वसस्यासाद्य शुद्धात्मनि
स्फीतं तत्सुखमेकतामुपगतं त्वं यासि रे निश्चितम् ।।२७।।

अर्थ :—हे मन बाह्य तथा तुझसे भिन्न जो स्त्री पुत्र आदि पदार्थ हैं उनमें रागद्वेषरूप अनेक प्रकारके विकल्पोंको करके क्यों दुःखके लिये तू व्यर्थ अशुभ कर्मको बाँधता है यदि तू आनंदरूपी जलके समुद्रमें शुद्धात्माको पाकर उसमें निवास करेगा तो तू विस्तीर्ण निर्वाणरूपी सुखको अवश्य प्राप्त करेगा इसलिये तुझे आनंद स्वरूप शुद्ध आत्मामें ही निवास करना चाहिये और उसीका ही ध्यान तथा मनन करना चाहिये ।।२७।।

इत्यास्थाय हृदि स्थिरं जिन भवत्पादप्रसादात्सती-
मध्यात्मैकतुलामयं जन इतः शुद्ध्यर्थमारोहति ।

एनं कर्तुममी च दोषिणमितः कर्मारयो दुर्धरा-
स्तिष्ठन्ति प्रसभं तदत्र भगवन् मध्यस्थसाक्षी भवान् ॥२८॥

अर्थ :—हे जिनेन्द्र ! आपके चरणकमलोंकी कृपासे पूर्वोक्त बातोंको भलीभांति मनमें चिंतवन कर जिस समय वह प्राणी शुद्धिके लिये अध्यात्मरूपी तुला (तखड़ी) चढ़ता है उससमय उसको दोषी बनानेके लिये कर्मरूपी भयंकर वैरी मौजूद है इसलिये हे भगवान् ऐसी दशामें आप ही मध्यमें बैठकर साक्षी हैं।

भावार्थ :—तखड़ीके दो पले होते हैं उनमेंसे अध्यात्मरूपी एक पलड़े पर तो शुद्धिके लिये यह प्राणी चढ़ता है और दूसरेमें कर्मरूपी वैरी उस प्राणीको दोषी बनानेके लिये मौजूद हैं और हे भगवन् आप तो दोनोंके बीचमें साक्षी हैं इसलिये आपको पूरी तौरसे न्याय करना चाहिये ॥२८॥

विकल्परूप ध्यान तो संसारस्वरूप है और निर्विकल्पध्यान मोक्षस्वरूप है इस बातको आचार्य दिखाते हैं—

द्वैतं संसृतिरेव निश्चयवशादद्वैतमेवामृतं-
संक्षेपादुभयत्र जल्पितमिदं पर्यन्तकाष्ठागतम् ।

निर्गत्यादिपदाच्छनैः शबलितादन्यत्समालम्बते
यः सो ऽसंज्ञ इति स्फुटं व्यवहृतेर्ब्रह्मादिनामेति च ॥२९॥

अर्थ :—द्वैत सविकल्पध्यान तो वास्तविक रीतिसे संसार स्वरूप है तथा अद्वैत (निर्विकल्पक) ध्यान मोक्षस्वरूप है यह संसार तथा मोक्षमें अंतदशाको प्राप्त संक्षेपसे कथन है तथा जो मनुष्य इन दोनोंमेंसे आदिका जो द्वैतपद है उनसे धीरेसे हटकर अद्वैतपदको आलम्बन करता है वह पुरुष वास्तविक रीतिसे नामरहित हो जाता है अथवा उसी पुरुषको व्यवहार नयसे ब्रह्मा, विधाता आदि नामसे पुकारते हैं।

भावार्थ :—जो पुरुष सविकल्पध्यानको करनेवाला है वह तो संसारमें ही धूमा करता है किन्तु जो पुरुष निर्विकल्पध्यानका आचरण करता है वह मोक्षमें जाकर सिद्धपदको प्राप्त करता है तथा सिद्धोंका निश्चयनयसे कोई नाम न होनेसे वह नाम रहित हो जाते हैं अथवा व्यवहारनयसे उन्हींको ब्रह्मा आदि नामसे भी पुकारते हैं॥२९॥

चारित्रं यदमाणि केवलदृशा देव त्वया मुक्तये
पुंसा तत्खलु मादृशेन विषमे काले कलौ दुर्धरम् ।

भक्तिर्या समभूदिह त्वयि दृढा पुण्यैः पुरोपार्जितैः
संसारार्णवतारणे जिन ततः सैवास्तु पोतो मम ॥३०॥

अर्थ :—हे जिनेन्द्रदेव ! जो आपने केवलज्ञानरूपी दृष्टिसे मुक्तिके लिये चारित्रका वर्णन किया है उस चारित्रको इस भयंकर कलिकालमें मेरे समान मनुष्य बड़ी कठिनतासे धारण कर सकता है किन्तु पूर्वकालमें संचित जो पुण्य उससे जो मेरी आपमें दृढ़ भक्ति है वही हे जिन मुझे संसाररूपी समुद्रसे पार करनेमें जहाजके समान हो अर्थात् मुझे संसार समुद्रसे वही भक्ति पार कर सकेगी।

भावार्थ :—बिना कर्मोंका नाशकर मोक्षकी प्राप्ति नहीं हो सकती और कर्मोंका नाश आपके द्वारा वर्णन किये हुए चारित्र (तप)से होता है उस तपको शक्तिके अभावसे इस पंचमकालमें हे भगवन् ! मुझ सरीखा मनुष्य धारण नहीं कर सका इसलिये हे भगवन् ! यही प्रार्थना है कि भाग्यके उदयसे जो आपमें मेरी दृढ़भक्ति है उसीसे मेरे कर्म नष्ट हो जावे और मुझे मोक्षकी प्राप्ति होवे ॥३०॥

इन्द्रत्वं च निगोदतां च बहुधा मध्ये तथा योनयः
संसारे भ्रमता चिरं यदखिलाः प्राप्ता मयानन्तशः ।
तन्नापूर्वमिहास्ति किंचिदपि मे हित्वा विमुक्तिप्रदां
सम्यग्दर्शनबोधवृत्तिपदवीं तां देव पूर्णां कुरु ॥३१॥

अर्थ :—इस संसारमें भ्रमणकर मैंने इन्द्रपना, निगोदपना और बीचमें अन्य भी समस्त प्रकारकी योनि अनंतबार प्राप्त की है इसलिये इन पदवीयोंमेंसे कोई भी पदवी मेरे लिये अपूर्व नहीं है। किन्तु मोक्षपदको देनेवाली सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्रकी पदवी अभीतक नहीं मिली है इसलिये हे भगवान्! यह प्रार्थना है कि सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्रकी पदवीको ही पूर्ण करो।

भावार्थ :—यद्यपि संसारमें बहुतसी इन्द्र चक्रवर्ती आदि पदवी हैं और वे समस्त पदवी मैंने प्राप्त भी कर ली हैं किन्तु हे भगवन्! जो पदवी सर्वोत्कृष्ट मोक्षरूपी सुखको देनेवाली है वह सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्रकी पदवी अभीतक मैंने नहीं प्राप्त की है इसलिये यह विनयपूर्वक प्रार्थना है कि कृपाकर मुझे सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्रकी पदवीको पूर्णतया प्रदान करे॥३१॥

श्रीवीरेण मम प्रसन्नमनसा तत्किंचिदुच्चैः पद-
प्राप्त्यर्थं परमोपदेशवचनं चित्ते समारोपितम्।
येनास्तामिदमेकभूतलगतं राज्यं क्षणध्वंसि यत्
त्रैलोक्यस्य च तन्न मे प्रियमिह श्रीमज्जिनेश प्रभो॥३२॥

अर्थ :—बाह्य तथा अभ्यंतर लक्ष्मीसे शोभित ऐसे श्री वीरनाथ भगवानने अपने प्रसन्नचित्तसे सबसे ऊँचे पदकी प्राप्तिके लिये जो मेरे चित्तमें उपदेश जमाया है अर्थात् उपदेश दिया है उस उपदेशके सामने क्षणभरमें विनाशिक ऐसा पृथ्वीका राज्य मुझे प्रिय नहीं है यह बात तो दूर रहो किन्तु हे प्रभो ! हे जिनेन्द्र ! उस उपदेशके सामने तीनलोकका राज्य भी मुझे प्रिय नहीं है।

भावार्थ :—यद्यपि संसारमें पृथ्वीका राज्य तथा तीन लोकका राज्य मिलना भी एक उत्तम बात है किन्तु हे भगवन् ! प्रसन्नचित्तसे श्रीवीरनाथ भगवानने जो मुझे उपदेश दिया है उसके सामने वे दोनों बातें मुझे इष्ट नहीं है इसलिये मैं ऐसे उपदेशका ही प्रेमी हूँ॥३२॥

सूरेः पद्मनन्दिनः कृतिमिमामालोचनामर्हता-
मग्रे यः पठति त्रिसंध्यममलश्रद्धानताङ्गो नरः ।
योगीन्द्रैश्चिरकालरूढतपसा यत्नेन यन्मृग्यते
तत्प्राप्नोति परं पदं स मतिमानानन्दसद्म ध्रुवम् ॥३३॥

अर्थ :—श्रद्धासे जिसका शरीर नम्रीभूत है ऐसा जो मनुष्य श्रीपद्मनन्दि आचार्य द्वारा की गई आलोचना नामकी कृतिको तीनोंकाल श्रीअर्हन्तदेवके सामने पढ़ता है वह

बुद्धिमान मनुष्य उस पदको प्राप्त होता है जिस पदको चिरकालपर्यन्त तपकर बड़े-बड़े मुनि घोर प्रयत्न करनेपर प्राप्त करते हैं।

भावार्थ :—जो मनुष्य प्रातःकाल मध्याह्नकाल तथा सायंकाल तीनोंकालोंमें श्री अर्हन्तदेवके सामने आलोचना पाठ पढ़ता है वह शीघ्र ही मोक्षको प्राप्त होता है इसलिये मोक्षाभिलाषीयोंको अवश्य ही श्री अर्हन्तदेवके सामने पद्मनन्दि आचार्य द्वारा बनाई हुई आलोचना नामक कृतिका तीनों काल पाठ करना चाहिये ॥३३॥

इस प्रकार इस ग्रंथमें आलोचना नामक अधिकार समाप्त हुआ।

ॐ

श्री पद्मनंदि आचार्य विरचिता
पद्मनंदिपंचविंशतिकामांथी

आलोचना अधिकारनो

हिन्दी लिपीमां भाषांतर

श्री पद्मनंदि आचार्यदेव आदिमंगळथी आलोचना अधिकारनी शरूआत करे छे :—

१. अर्थ :—हे जिनेश ! हे प्रभो ! जो सज्जनोनुं मन, आंतर तथा बाह्य मळरहित थईने तत्त्वस्वरूप तथा वास्तविक आनंदना निधान अेवा आपनो आश्रय करे, जो तेमना चित्तमां आपना नामना स्मरणरूप अनंत प्रभावशाळी महामंत्र मोजूद होय अने आप द्वारा प्रगट थयेल सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान अने सम्यक्चारित्ररूप मोक्षमार्गमां जो तेमनुं आचरण होय तो ते सज्जनोने इच्छित विषयनी प्राप्तिमां विघ्न शेनुं होय ? अर्थात् न होय.

भावार्थ :—जो सज्जनोना मनमां आपनुं ध्यान होय तथा आपना नाम-स्मरणरूप महामंत्र मोजूद होय अने तेओ मोक्षमार्गमां गमन करवावाळा होय तो तेमने अभीष्टनी

प्राप्तिमां कोई प्रकारनुं विघ्न आवी शकतुं नथी.

हवे आचार्यदेव स्तुति द्वारा 'देव कोण होई शके तथा केवळज्ञान प्राप्तिनो क्रम केवो होय' ते वर्णवे छे :—

२. अर्थ :—हे जिनेंद्रदेव ! संसारना त्याग अर्थे परिग्रहरहितपणुं, रागरहितपणुं, [१]समता, सर्वथा कर्मोनो नाश अने अनंत दर्शन, अनंत सुख, अनंत वीर्य सहित समस्त लोकालोकने प्रकाशनारुं केवळज्ञान अेवो क्रम आपने ज प्राप्त थयो हतो, परंतु आपथी अन्य कोई देवने अे क्रम प्राप्त थयो नथी, तेथी आप ज शुद्ध छो अने आपना चरणोनी सेवा सज्जन पुरुषोअे करवी योग्य छे.

भावार्थ :—हे भगवान ! आपे ज संसारथी मुक्त थवा अर्थे समस्त परिग्रहनो त्याग कर्यो छे तथा रागभावने छोड्यो छे अने समताने धारण करी छे तथा अनंत विज्ञान, अनंत दर्शन, अनंत सुख अने अनंत वीर्य आपने ज प्रगट थयां छे, तेथी आप ज शुद्ध अने सज्जनोनी सेवाने पात्र छो.

सेवानो दृढ निश्चय अने प्रभु-सेवानुं माहात्म्य :-

३. अर्थ :-हे त्रैलोक्यपते ! आपनी सेवामां जो मारो दृढ निश्चय छे तो मने अत्यंत बळवान संसाररूप

१. वीतरागभाव

वैरीने जीतवो कांई मुश्केल नथी, केम के जे मनुष्यने जळवृष्टिथी हर्षजनक उत्तम फुवारासहित घर प्राप्त थाय तो ते पुरुषने जेठ मासनो प्रखर मध्याह्न–ताप शुं करी शके तेम छे ? अर्थात् कांई करी शके नहि.

भावार्थ :—हे त्रण लोकना ईश ! जेम शीतळ जळ वडे ऊडता फुवाराथी सुशोभित उत्तम घरमां बेठेला पुरुषने जेठ मासनी बपोरनी अत्यंत गरमी पण कांई करी शके नहि तेम हुं निश्चयपूर्वक आपनी सेवामां दृढपणे स्थित छुं, तो मने बळवान संसाररूप वैरी पण जराय त्रास आपी शके नहि.

भेदज्ञान द्वारा साधकदशा :—

४. अर्थ :–आ पदार्थ साररूप छे अने आ पदार्थ असाररूप छे. अे प्रकारे सारासारनी परीक्षामां अेकचित्त थई, जे कोई बुद्धिमान मनुष्य त्रणे लोकना समस्त पदार्थोनो, अबाधित गंभीर दृष्टिथी विचार करे छे, तो ते पुरुषनी दृष्टिमां हे भगवान ! आप ज अेक सारभूत पदार्थ छो अने आपथी भिन्न समस्त पदार्थो असारभूत ज छे. अतः आपना आश्रयथी ज मने परम संतोष थयो छे.

हवे आचार्यदेव 'पूर्ण साध्य' वर्णवे छे :—

५. अर्थ :–हे जिनेश्वर ! समस्त लोकालोकने अेक साथे जाणनारुं आपनुं ज्ञान छे, समस्त लोकालोकने अेक साथे देखनारुं आपनुं दर्शन छे, आपने अनंत सुख अने अनंत बळ छे तथा आपनी प्रभुता पण निर्मलतर छे, वळी आपनुं शरीर [१]देदीप्यमान छे; तेथी जो योगीश्वरोअे सम्यक् योगरूप [२]नेत्र द्वारा आपने प्राप्त करी लीधा तो तेओअे शुं न जाणी लीधुं ? शुं न देखी लीधुं ? तथा तेओअे शुं न प्राप्त करी लीधुं ? अर्थात् सर्व करी लीधुं.

भावार्थ :—जो योगीश्वरोअे पोतानी उत्कृष्ट योग-दृष्टिथी अनंत गुणसंपन्न आपने जोई लीधा तो तेओअे सर्व देखी लीधुं, सर्व जाणी लीधुं अने सर्व प्राप्त करी लीधुं.

पूर्णनी प्राप्तिनुं प्रयोजन :—

६. अर्थ :—हे जिनेंद्र ! आपने ज हुं त्रण लोकना स्वामी मानुं छुं, आपने ज जिन अर्थात् अष्ट कर्मोना विजेता तथा मारा स्वामी मानुं छुं, मात्र आपने ज भक्तिपूर्वक नमस्कार करुं छुं. सदा आपनुं ज ध्यान करुं छुं, आपनी ज सेवा अने स्तुति करुं छुं अने केवळ आपने

१. श्री तीर्थंकर प्रभुनुं शरीर परम औदारिक अने स्फटिक रत्न जेवुं निर्मळ होईने देदीप्यमान होय छे. २. श्रद्धा–ज्ञान.

ज मारुं शरण मानुं छुं. अधिक शुं कहेवुं ? जो कंई संसारमां प्राप्त थाओ तो अे थाओ के आपना सिवाय अन्य कोई पण साथे मारे प्रयोजन न रहे.

भावार्थ :—हे भगवान ! आप साथे ज मारे प्रयोजन रहे अने आपथी भिन्न अन्यथी मारे कोई प्रकारनुं प्रयोजन न रहे, अेटली विनयपूर्वक प्रार्थना छे.

हवे आचार्यदेव 'आलोचना'नो आरंभ करे छे :—

७. अर्थ :—हे जिनेश्वर ! में भ्रांतिथी मन, वचन अने काया द्वारा भूतकालमां अन्य पासे पाप कराव्यां छे, स्वयं कर्यां छे अने पाप करनारा अन्योने अनुमोद्यां छे तथा तेमां मारी संमति आपी छे. वळी वर्तमानमां हुं मन, वचन अने काया द्वारा अन्य पासे पाप करावुं छुं, स्वयं पाप करुं छुं अने पाप करनारा अन्योने अनुमोदुं छुं, तेम ज भविष्यकालमां हुं मन, वचन अने काया द्वारा अन्य पासे पाप करावीश, स्वयं पाप करीश अने पाप करनारा अन्योने अनुमोदीश—ते समस्त पापनी आपनी पासे बेसी जाते निंदा–गर्हा करनार अेवो हुं तेना सर्व पाप सर्वथा मिथ्या थाओ.

भावार्थ :—हे जिनेश्वर ! भूत, वर्तमान,

भविष्य–त्रणे काळमां जे पापो में मन-वचन-काया द्वारा कारित, कृत अने अनुमोदनथी उपार्जन कर्यां छे, हुं करुं छुं अने करीश–अे समस्त पापोनो अनुभव करी हुं आपनी समक्ष स्वनिंदा करुं छुं; माटे मारा ते समस्त पापो सर्वथा मिथ्या थाओ.

आचार्यदेव 'प्रभुनी अनंत ज्ञान-दर्शन शक्ति वर्णवतां आत्म-शुद्धि अर्थे आत्मनिंदा करे छे :—

८. अर्थ :—हे जिनेंद्र! जो आप भूत, भविष्य, वर्तमान त्रिकाळगोचर अनंत पर्यायोयुक्त लोकालोकने सर्वत्र अेक साथे जाणो छो तथा देखो छो, तो हे स्वामिन्! मारा अेक जन्मना पापोने शुं आप नथी जाणता? अर्थात् अवश्यमेव आप जाणो छो; तेथी हुं आत्मनिंदा करतो करतो आपनी पासे स्वदोषोनुं कथन (आलोचन) करुं छुं; अने ते केवळ शुद्धि अर्थे ज करुं छुं.

भावार्थ :—हे भगवान! जो आप अनंत भेदसहित लोक तथा अलोकने अेकसाथे जाणो छो अने देखो छो तो आप मारा समस्त दोषोने पण सारी रीते जाणता ज हो. वळी हुं आपनी सामे निज दोषोनुं कथन (आलोचन) करुं छुं. ते केवळ आपने संभळाववा माटे नहि, किंतु शुद्धि अर्थे ज करुं छुं.

हवे आचार्यदेव भव्य जीवोने तेमना आत्माने त्रण शल्य रहित राखवानो बोध आपे छे :—

६. अर्थ :—हे प्रभो ! व्यवहार नयनो आश्रय करनार अथवा मूलगुण तथा उत्तरगुणोने धारण करनार मारा जेवा मुनिने जे दूषणोनुं संपूर्ण रीते स्मरण छे, ते दूषणनी शुद्धिअर्थे आलोचना करवाने आपनी सामे सावधानीपूर्वक बेठो छुं, केम के ज्ञानवान भव्य जीवोअे सदा पोताना हृदय मायाशल्य, निदानशल्य अने मिथ्यात्वशल्य–अे त्रण शल्य रहित ज राखवा जोईअे.

स्वभावनी सावधानी :—

१०. अर्थ :—हे भगवान ! आ संसारमां सर्व जीव वारंवार असंख्यात लोकप्रमाण प्रगट तथा अप्रगट नाना प्रकारना [१]विकल्पो सहित होय छे. वळी अे जीव जेटला प्रकारना विकल्पो सहित छे. तेटला ज विविध प्रकारना दुःखो सहित पण छे, परंतु जेटला विकल्पो छे तेटला प्रायश्चित्तो शास्त्रमां नथी; तेथी ते समस्त असंख्यात लोकप्रमाण विकल्पोनी शुद्धि आपनी समीपे ज थाय छे.

भावार्थ :—यद्यपि दूषणोनी शुद्धि प्रायश्चित्त करवाथी थाय छे, किंतु हे जिनपते ! जेटलां दूषणो छे

१. विकल्पो=शुभ–अशुभभाव

तेटलां प्रायश्चित्तो शास्त्रमां कह्यां नथी; तेथी समस्त दूषणोनी शुद्धि आपनी समीपे ज थाय छे.

परथी पराङ्‌मुख थई स्वनी प्राप्ति :—

११. अर्थ :—हे देव ! सर्व प्रकारना परिग्रहरहित, समस्त शास्त्रोनो ज्ञाता, क्रोधादि कषायरहित, शांत, अेकांतवासी भव्य जीव, बधा बाह्य पदार्थोथी मन तथा इन्द्रियोने पाछा हठावी अने अखंड निर्मळ सम्यग्ज्ञाननी मूर्तिरूप आपमां स्थिर थई, आपने ज देखे छे ते मनुष्य आपना सांनिध्य (समीपता) ने प्राप्त करे छे.

भावार्थ :—ज्यां सुधी मन तथा इन्द्रियना व्यापार बाह्य पदार्थोमां जोडायेला रहे छे त्यां सुधी कोईपण मनुष्य आपना स्वरूपने प्राप्त करी शकतो नथी; परंतु जे मनुष्य मन तथा इन्द्रियोने बाह्य पदार्थोथी पाछा हठावी ले छे ते वास्तविकपणे आपना स्वरूपने देखी अने जाणी शके छे, माटे जे मनुष्य समस्त प्रकारना परिग्रहोथी रहित थई, शास्त्रोना सारी रीते ज्ञाता थई, शांत अने अेकांतवासी थई, मन तथा इन्द्रियोने बाह्य पदार्थोथी पाछा हठावी लई अने तेमने आपना स्वरूपमां जोडी दई आपने जोई लीधा छे, ते मनुष्ये आपना समीपपणाने प्राप्त कर्युं छे, अेम सारी रीते निश्चित छे.

स्वभावनी अेकाग्रताथी उत्तमपद-मोक्षनी प्राप्ति :-

१२. अर्थ :—हे अर्हंत् प्रभु ! पूर्व भवमां कष्टथी संचय करेल महा पुण्यथी जे मनुष्य, त्रण लोकना पूजार्ह (पूजाने योग्य) आपने पाम्यो छे ते मनुष्यने, ब्रह्मा, विष्णु आदिने पण निश्चयपूर्वक अलभ्य अेवुं उत्तम पद प्राप्त थाय छे. हे नाथ ! हुं शुं करुं ? आपनामां अेक चित्त कर्या छतां मारुं मन प्रबळपणे बाह्य पदार्थो प्रत्ये दोडे छे, अे मोटो खेद छे.

भावार्थ :—हे भगवान ! जे मनुष्ये आपने प्राप्त कर्या छे ते मनुष्यने उत्तम पदनी प्राप्ति थाय छे. स्वयं ब्रह्मा, विष्णु पण ते प्राप्त करी शकता नथी, परंतु हे जिनेंद्र ! आ सर्व वात जाणतां छतां अने मारुं चित्त आपनामां लगाडतां छतां पण बाह्य पदार्थोमां दोडी-दोडी जाय छे, अे ज मोटो खेद छे.

मोक्षार्थे वीर्यनो वेग :—

१३. अर्थ :—हे जिनेश ! आ संसार नाना प्रकारना दुःखो देनार छे. ज्यारे वास्तविक सुखनो आपनार तो [१]मोक्ष छे, तेथी ते मोक्षनी प्राप्ति अर्थे अमे समस्त धन, धान्य आदि परिग्रहोनो त्याग कर्यो, तपोवन (तपथी पवित्र

१. मोक्ष=आत्मानी संपूर्ण निर्मल दशा.

थयेली भूमि)मां वास कर्यो, सर्व प्रकारना संशय पण छोड्या अने अत्यंत कठिन व्रत पण धारण कर्या, हजी सुधी तेवां दुष्कर व्रतो धारण कर्या छतां पण सिद्धि (मोक्ष)नी प्राप्ति न थई, केम के प्रबळ पवनथी कंपायेला पांदडानी माफक अमारुं मन रात्रि-दिवस बाह्य पदार्थोमां भ्रमण करतुं रहे छे.

मनने संसारनुं कारण जाणी पश्चात्ताप :—

१४. अर्थ :—हे भगवान ! जे मन, बाह्य पदार्थोने मनोहर मानी तेमनी प्राप्ति माटे ज्यां त्यां भटक्या करे छे, जे ज्ञानस्वरूपी आत्माने विना प्रयोजने सदा अत्यंत व्याकुल कर्या करे छे, जे इन्द्रियरूप गामने वसावे छे (अर्थात् आ मननी कृपाथी ज इन्द्रियोनी विषयोमां स्थिति थाय छे) अने जे संसार उत्पादक कर्मोनो परम मित्र छे, (अर्थात् मन आत्मारूप गृहमां कर्मोने सदा लावे छे), ते मन, ज्यां सुधी जीवित रहे छे त्यां सुधी मुनिओने क्यांथी कल्याणनी प्राप्ति होई शके ! अर्थात् कल्याणनी प्राप्ति होई शके नहि.

भावार्थ :—ज्यां सुधी आत्मामां कर्मोनुं आवागमन रह्यां ज करे छे त्यां सुधी आत्मा सदा व्याकुळ ज थतो रहे छे. ते कर्म आत्मामां मन द्वारा आवे छे; केम

के मनना आश्रयथी इन्द्रियो, रूप आदि देखवामां प्रवृत्त थाय छे अने रूप आदिने देखी जीव राग-द्वेष आदि उत्पन्न करे छे, त्यारे तेने ज्ञानावरण आदि द्रव्यकर्मोनी उत्पत्ति थाय छे; तेथी ते कर्मोना संबंधथी आत्मा सदा व्याकुळ ज रहे छे अने ज्यारे आत्मा ज व्याकुळ रहे त्यारे मुनिओने कल्याणनी प्राप्ति पण क्यांथी होई शके ? माटे मन ज कल्याणने रोकनारुं छे.

मोहना नाश माटे प्रार्थना :—

१५. अर्थ :—मारुं मन, निर्मळ तथा शुद्ध अखंड ज्ञानस्वरूप आपमां लगाव्यां छतां पण, मृत्यु तो आववानुं ज छे अेवा विकल्प वडे, आपथी अन्य बाह्य समस्त पदार्थो तरफ निरंतर घूम्या करे छे. हे स्वामिन् ! तो शुं करवुं ? केम के आ जगतमां, मोहवशात् कोने मृत्युनो भय नथी ? सर्वने छे, माटे सविनय प्रार्थना छे के समस्त प्रकारना अनर्थो करनार तथा अहित करनार मारा मोहने नष्ट करो.

भावार्थ :—ज्यां सुधी मोहनो संबंध आत्मानी साथे रहेशे त्यां सुधी मारुं चित्त, बाह्य पदार्थोमां घूम्या करशे अने ज्यां सुधी चित्त घूमतुं रहेशे त्यां सुधी आत्मामां सदा कर्मोनुं आवागमन पण रह्या करशे. आ प्रकारे तो

आत्मा सदा व्याकुळ ज रह्या करशे, माटे हे भगवान ! आ नाना प्रकारना अनर्थो करनार मारा मोहने सर्वथा नष्ट करो के जेथी मारा आत्माने शांति थाय.

सर्व कर्मोमां मोह ज बळवान छे, अेम आचार्य दर्शावे छे :—

१६. अर्थ :—ज्ञानावरण आदि समस्त कर्मोमां मोह-कर्म ज अत्यंत बळवान कर्म छे. अे मोहना प्रभावथी आ मन ज्यां त्यां चंचळ बनी भ्रमण करे छे अने मरणथी डरे छे. जो आ मोह न होय तो निश्चयनय प्रमाणे न तो कोई जीवे या न तो कोई मरे, केम के आपे आ जगतने जे अनेक प्रकारे देख्युं छे, ते पर्यायार्थिक नयनी अपेक्षाअे ज देख्युं छे. द्रव्यार्थिक नयनी अपेक्षाअे नहि, तेथी हे जिनेंद्र ! आ मारा मोहने ज सर्वथा नष्ट करो.

पर संयोग अध्रुव जाणी तेनाथी खसी, अेक ध्रुव आत्मस्वभावमां स्थित थवानी भावना :—

१७. अर्थ :—वायुथी व्याप्त समुद्रनी क्षणिक जळ-लहरीओना समूह समान, सर्व काळे तथा सर्व क्षेत्रे आ जगत क्षण मात्रमां विनाशी छे. अेवो सम्यक् प्रकारे विचार करी, आ मारुं मन समस्त संसारने उत्पन्न करनार व्यापार (प्रवृत्ति)थी रहित थई, हे जिनेंद्र ! आपना

निर्विकार परमानंदमय परब्रह्मस्वरूपमां स्थित थवाने इच्छा करे छे.

शुभ, अशुभ उपयोगथी रवसी शुद्ध उपयोगमां निवासनी भावना :—

१८. अर्थ :—जे समये अशुभ उपयोग वर्ते छे ते समये तो पापनी उत्पत्ति थाय छे अने ते पापथी जीव नाना प्रकारना दुःखोने अनुभवे छे, जे समये शुभ उपयोग वर्ते छे ते समये पुण्यनी उत्पत्ति थाय छे; अने ते पुण्यथी जीवने सुख (अनुकुल संयोग) प्राप्त थाय छे. अे बंने पाप-पुण्यरूप द्वन्द्व संसारनुं ज कारण छे. अर्थात् अे बंनेथी सदा संसार ज उत्पन्न थाय छे, किंतु शुद्धोपयोगथी अविनाशी अने आनंदस्वरूप पदनी प्राप्ति थाय छे. हे अर्हंत प्रभो ! आप तो ते पदमां निवास करी रह्या छो, पण हुं अे शुद्धोपयोगरूप पदमां निवास करवाने इच्छुं छुं.

भावार्थ :—उपयोगना त्रण भेद छे, पहेलो अशुभोपयोग, बीजो शुभोपयोग अने त्रीजो शुद्धोपयोग. तेमां पहेलां बे उपयोगथी तो संसारमां ज भटकवुं पडे छे; केम के जे समये जीवनो उपयोग अशुभ हशे ते समये तेने पापनो बंध थशे अने पापनो बंध थवाथी तेने नाना प्रकारनी माठी गतिओमां भ्रमण करवुं पडशे अने जे समये उपयोग

शुभ हशे ते समये ते शुभ योगनी कृपाथी तेने राजा, महाराजा आदि पदोनी प्राप्ति थशे; तेथी ते पण संसारने वधारनार छे. किंतु, जे समये तेने शुद्धोपयोगनी प्राप्ति थशे ते समये संसारनी प्राप्ति ज थशे नहि, पण निर्वाणनी प्राप्ति ज थशे; माटे हे भगवान! हुं शुद्धोपयोगमां ज स्थित रहेवाने इच्छुं छुं.

आत्मस्वरूपनुं नास्तिथी अने अस्तिथी वर्णन :—

१६. अर्थ :—जे आत्मस्वरूप-ज्योति, नथी तो स्थित अंदर के नथी स्थित बाह्य, तथा नथी तो स्थित दिशामां के नथी स्थित विदिशामां; तेम ज नथी स्थूल के नथी सूक्ष्म; ते आत्मज्योति नथी तो पुल्लिंग, नथी स्त्रीलिंग के नथी नपुंसक-लिंग पण; वळी ते नथी भारे के नथी हलको; ते ज्योति कर्म, स्पर्श, शरीर, गंध, संख्या, वचन, वर्णथी रहित छे, निर्मळ छे अने सम्यग्ज्ञानदर्शनस्वरूप मूर्ति छे; ते उत्कृष्ट ज्योतिस्वरूप हुं छुं, किंतु ते उत्कृष्ट आत्मस्वरूप-ज्योतिथी हुं भिन्न नथी.

त्रिकाळी आत्मानी शक्ति :—

२०. अर्थ :—हे भगवान ! चैतन्यनी उन्नतिनो नाश करनार अने विना कारणे सदा वैरी अेवा दुष्ट कर्मे आपमां अने मारामां भेद पाड्यो छे, परंतु कर्मशून्य

अवस्थामां जेवो आपनो आत्मा छे तेवो ज मारो आत्मा छे. आ समये ते कर्म अने हुं आपनी सामे खडा छीओ, तेथी ते दुष्ट कर्मने हठावी दूर करो; केम के नीतिमान प्रभुओनो तो ओ धर्म छे के ते सज्जनोनी रक्षा करे अने दुष्टोनो नाश करे.

भावार्थ :—हे भगवान ! जेवो अनंतज्ञान–दर्शन–सुख–वीर्य आदि गुणस्वरूप आपनो आत्मा छे तेवो ज–ते ज गुणो सहित–मारो आत्मा पण छे, परंतु भेद अेटलो ज छे के आपने ते गुणो–निर्मळ अंशो प्रगट थई गया छे, ज्यारे मने ते गुणो प्रकट्या नथी. आ भेद पाडनार ते ज कर्म छे, केम के ते कर्मनी कृपाथी मारा आ स्वभाव पर आवरण पड्युं छे. हवे आ समये अमे बंने आपनी समक्ष हाजर छीओ तो ते दुष्ट कर्मने दूर करो, केम के आप त्रण लोकना स्वामी छो; अने नीतिज्ञनो धर्म छे के ते सज्जनोनी रक्षा करे तथा दुष्टोनो नाश करे.

आत्मानुं अविकारी स्वरूप :—

२१. अर्थ :—हे भगवान ! विविध प्रकारना आकार अने विकार करनार वादळां आकाशमां होवा छतां पण, जेम आकाशना स्वरूपनो कांईपण फेरफार करी शकतां नथी, तेम आधि, व्याधि, जरा, मरण आदि पण

मारा स्वरूपनो कांईपण फेरफार करी शके तेम नथी, केम के अे सर्व शरीरना विकार छे, जड छे; ज्यारे मारो आत्मा ज्ञानवान अने शरीरथी भिन्न छे.

भावार्थ :—जेम आकाश अमूर्त छे, तेथी रंगबेरंगी वादळां तेना पर पोतानो कांईपण प्रभाव पाडी शकतां नथी तथा तेना स्वरूपनुं परिवर्तन पण करी शकतां नथी, तेम आत्मा ज्ञान-दर्शनमय अमूर्त पदार्थ छे, तेथी तेना पर आधि, व्याधि, जरा, मरण आदि पोतानो कांईपण प्रभाव पाडी शकतां नथी (तथा तेना स्वरूपनुं परिवर्तन पण करी शकतां नथी), केमके ते मूर्त शरीरनो धर्म छे, ज्यारे आत्मा शरीरथी सर्वथा भिन्न छे.

स्वमां सुखने परमां दुःख :—

२२. अर्थ :—जेम माछली पाणी विनानी भूमि पर पडतां तरफडी दुःखी थाय छे, तेम हुं पण (आपनी शीतल छाया विना), नाना प्रकारना दुःखोथी भरपूर संसारमां सदा बळी झळी रहुं छुं. जेम ते माछली ज्यारे जळमां रहे छे त्यारे सुखी रहे छे तेम ज्यां सुधी मारुं मन आपना करुणारसपूर्ण अत्यंत शीतल चरणोमां प्रविष्ट (प्रवेशेलुं) रहे छे त्यां सुधी हुं पण सुखी रहुं छुं, तेथी हे नाथ ! मारुं मन आपना चरण कमळो छोडी अन्य स्थळे

के ज्यां हुं दुःखी थाउं त्यां प्रवेश न करे अे प्रार्थना छे.

आत्मा अने कर्मनी भिन्नता :—

२३. अर्थ :—हे भगवान ! मारुं मन, इन्द्रियोना समूहद्वारा बाह्य पदार्थो साथे संबंध करे छे, तेथी नाना प्रकारना कर्मो आवी मारा आत्मा साथे बंधाय छे; परंतु वास्तविकपणे हुं ते कर्मोथी सदाकाल सर्व क्षेत्रे जुदो ज छुं तथा ते कर्मो आपना चैतन्यथी जुदा ज छे अथवा तो चैतन्यथी आ कर्मोने भिन्न पाडवामां आप ज कारण छो; तेथी हे शुद्धात्मन् ! हे जिनेंद्र ! मारी स्थिति निश्चयपूर्वक आपमां ज छे.

भावार्थ :—यदि निश्चयथी जोवामां आवे तो हे जिनेंद्र ! आप तथा हुं समान ज छीअे, केम के निश्चयनयथी आपनो आत्मा कर्मबंध रहित छे तेम मारा आत्मा साथे पण कोई प्रकारना कर्मोनुं बंधन रहेतुं नथी; तेथी हे भगवान! मारी स्थिति निश्चयपूर्वक आपना स्वरूपमां ज छे.

धर्मीनी अंतर्भावना :—

२४. अर्थ :—हे आत्मन् ! तारे नथी तो लोकथी काम, नथी तो अन्यना आश्रयथी काम; तारे नथी तो द्रव्यथी (लक्ष्मीथी) प्रयोजन, नथी तो शरीरथी प्रयोजन,

तारे वचन तथा इन्द्रियोथी पण कांई काम नथी, तेम ज [१](दश) प्राणोथी पण प्रयोजन नथी; अने नाना प्रकारना विकल्पोथी पण कांई काम नथी, केम के ते सर्व पुद्गल द्रव्यना ज पर्यायो छे. वळी ताराथी भिन्न छे तोपण, बहु खेदनी वात अे छे के तुं तेमने पोताना मानी तेमनो आश्रय करे छे, तेथी शुं तुं दृढ बंधनथी बंधाईश नहि? अवश्य बंधाईश.

भावार्थ :—हे आत्मन्! तुं तो निर्विकार चैतन्यस्वरूपी छो, समस्त लोक तथा शरीर, इन्द्रिय द्रव्य, वचन आदि सर्व पदार्थो पुद्गल द्रव्यना पर्याय छे अने ताराथी भिन्न छे, अेम होवा छतां पण, जो तुं तेमने पोताना समजी तेमनो आश्रय करीश तो तुं अवश्यमेव बंधाईश; तेथी ते सर्व परपदार्थो परनी ममता छोडी शुद्धानंद चैतन्यस्वरूप आत्मानुं ध्यान कर के जेथी तुं कर्मोथी न बंधाय.

भेदविज्ञान द्वारा आत्मामांथी विकारनो नाश :—

२५. अर्थ :—धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, आकाश-द्रव्य, काल-द्रव्य—अे चारे द्रव्यो कोई पण प्रकारे मारुं

१. दस प्राण = पांच इन्द्रिय, त्रण बल (मनबल, वचनबल, कायबल) आयु, श्वासोच्छ्वास.

अहित करतां नथी; किंतु अे चारे द्रव्यो, गति, स्थिति आदि कार्योमां मने सहकारी छे, तेथी मारा सहायक थईने ज रहे छे; परंतु नोकर्म (त्रण शरीर, छ पर्याप्ति) अने कर्म जेनुं स्वरूप छे, अेवुं तथा समीपे रहेनार अने बंधने करनार अेक पुद्गल द्रव्य ज मारुं वैरी छे, तेथी आ समये में तेना भेदविज्ञानरूप तलवारथी खंडखंड ऊडावी दीधा छे. (खरो वैरी तो पोतानो अशुद्धभाव छे.)

भावार्थ :— धर्म, अधर्म, आकाश, काल अने पुद्गल–अे पांच द्रव्य माराथी भिन्न छे, तेमांथी धर्म, अधर्म, आकाश अने काल–अे चार द्रव्य तो मारुं कोई प्रकारे अहित करतां नथी, परंतु मने सहाय करे छे. अर्थात् धर्मद्रव्य तो मारा गमनमां सहकारी छे, अधर्म द्रव्य स्थिति करवामां सहकारी छे, आकाशद्रव्य अवकाशदान देवामां पण मने सहकारी छे अने कालद्रव्यथी परिवर्तन थाय छे, तेथी ते परिवर्तन करवामां पण सहकारी छे, परंतु अेक पुद्गलद्रव्य ज मारुं बहु अहित करनार छे, केम के पुद्गलद्रव्य नोकर्म तथा कर्मस्वरूपमां परिणत थई मारा आत्मा साथे संबंध करे छे अने तेनी कृपाथी मारे नाना प्रकारनी गतिओमां भ्रमण करवुं पडे छे तेम ज मने सत्यमार्ग पण सूझतो नथी, तेथी भेदविज्ञानरूप तलवारथी

में तेना खंडखंड ऊडावी दीधा छे.

राग-द्वेषनो त्यागः—

२६. अर्थः—जीवोना नाना प्रकारना राग-द्वेष करनारा परिणामोथी जे प्रमाणे पुद्गल द्रव्य परिणमे छे ते प्रमाणे धर्म, अधर्म, आकाश अने काल—अे चार अमूर्त द्रव्यो राग-द्वेष करनारा परिणामोथी परिणमता नथी, ते राग-द्वेष द्वारा प्रबळ कर्मोनी उत्पत्ति थाय छे अने ते कर्मोथी संसार ऊभो थाय छे, तेथी संसारमां अनेक प्रकारनां दुःखो भोगववा पडे छे, माटे कल्याणनी इच्छा राखनार सज्जनोअे ते राग अने द्वेष सर्वथा छोडवा जोईअे.

अर्थः—पुद्गलना अनेक परिणाम थाय छे तेमां जे राग-द्वेष, पुद्गलना परिणाम छे तेनाथी आत्मामां कर्म सदा आवी बंधाया करे अने ते कर्मोने लीधे आत्माने संसारमां परिभ्रमण करवुं पडे छे तथा त्यां तेने विविध प्रकारना दुःखो सहन करवां पडे छे, माटे भव्य जीवोअे अेवा परम अहित करनार राग-द्वेषनो त्याग अवश्यमेव करी देवो जोईअे.

आनंदस्वरूप शुद्धात्मानुं ध्यान अने मननः—

२७. अर्थः—हे मन ! बाह्य तथा ताराथी भिन्न

जे स्त्री, पुत्र आदि पदार्थो छे तेमनामां राग-द्वेषस्वरूप अनेक प्रकारना विकल्पो करी तुं शा माटे दुःखद अशुभ कर्मो फोकट बांधे छे ? जो तुं आनंदरूप जळना समुद्रमां शुद्धात्माने पामी तेमां निवास करीश, तो तुं निर्वाणरूप विस्तीर्ण सुखने अवश्य प्राप्त करीश. अेटला माटे, तारे आनंदस्वरूप शुद्ध आत्मामां ज निवास करवो जोईअे अने तेनुं ज ध्यान तथा मनन करवुं जोईअे.

आत्मा मध्यस्थ साक्षी छे :—

२८. अर्थ :—हे जिनेंद्र ! आपना चरणकमळनी कृपाथी पूर्वोक्त वातोने सम्यक् प्रकारे मनमां विचारी जे समये आ जीव शुद्धि माटे अध्यात्मरूप त्राजवामां पग मूके छे ते ज समये, तेने दोषित बनाववाने भयंकर वैरी सामा पल्लामां हाजर छे. हे भगवान ! तेवा प्रसंगे आप ज मध्यस्थ साक्षी छो.

भावार्थ :—कांटाने बे छाबडा होय छे. तेमां अेक अध्यात्मरूप छाबडामां जीव शुद्धि अर्थे चडे छे, ते समये बीजा छाबडामां कर्मरूप वैरी ते प्राणीने दोषी बनाववा सामे हाजर ज छे, आवा प्रसंगे हे भगवान ! आप आ बन्ने वच्चे साक्षी छो; तेथी आपे नीतिपूर्वक न्याय करवो पडशे.

हवे [१]विकल्पस्वरूप ध्यान तो संसारस्वरूप छे अने निर्विकल्प ध्यान मोक्षस्वरूप छे अेम आचार्य दर्शावे छे :—

२६. अर्थ :—द्वैत (सविकल्पक ध्यान) तो वास्तविक रीते संसारस्वरूप छे अने अद्वैत (निर्विकल्पक ध्यान) मोक्षस्वरूप छे. संसार तथा मोक्षमां प्राप्त थती अंत (उत्कृष्ट) दशानुं आ संक्षेपथी कथन छे. जे मनुष्य, पूर्वोक्त बेमांथी प्रथम द्वैतपदथी धीरे धीरे पाछो हठी [२]अद्वैतपदनुं आलंबन स्वीकारे छे, ते पुरुष निश्चयनयथी नामरहित थई जाय छे अने ते पुरुष व्यवहारनयथी ब्रह्मा, विधाता आदि नामोथी संबोधाय छे.

भावार्थ :—जे पुरुष सविकल्पक ध्यान करे छे ते तो संसारमां ज भटक्या करे छे, किंतु जे पुरुष निर्विकल्पक ध्यान आचरे छे ते मोक्षमां जई सिद्धिपदने प्राप्त करे छे; सिद्धोनुं निश्चयनयथी कोई नाम नहि होईने ते नाम रहित थई जाय छे अने व्यवहारनयथी तेने ब्रह्मा आदि नामथी संबोधवामां आवे छे.

दृढ श्रद्धानी महिमा :—

३०. अर्थ :—हे केवळज्ञानरूप नेत्रोना धारक

१. विकल्परूप = राग-द्वेष युक्त, विकार युक्त,

२. निर्विकारी आत्मानुं

जिनेश्वर ! मोक्ष प्राप्त करवा अर्थे आपे जे चारित्रनुं वर्णन कर्युं छे ते चारित्र तो आ विषम कलिकालमां (दुषम पंचमकालमां) मारा जेवा मनुष्य घणी कठिनताथी धारण करी शके तेम छे, परंतु पूर्वोपार्जित पुण्योथी आपमां मारी जे दृढ भक्ति छे ते भक्ति ज, हे जिन ! मने संसाररूप समुद्रथी पार उतारवामां नौका समान थाओ. अर्थात् मने संसारसमुद्रथी आ भक्ति ज पार उतारी शकशे.

भावार्थ :—कर्मोनो नाश कर्या विना मोक्ष–प्राप्ति थई शकती नथी अने कर्मोनो नाश तो आप द्वारा वर्णित चारित्र (तप)थी थाय छे. हे भगवान ! शक्तिना अभावथी आ पंचमकालमां मारा जेवो मनुष्य ते तप करी शकतो नथी; तेथी हे परमात्मा ! मारी अे प्रार्थना छे के सद्भाग्ये आपमां मारी जे दृढ भक्ति छे, तेनाथी मारा कर्म नष्ट थई जाओ अने मने मोक्षनी प्राप्ति थाओ.

मोक्षपदनी प्राप्ति अर्थे प्रार्थना :—

३१. अर्थ :—आ संसारमां भ्रमण करी में इन्द्रपणुं, निगोदपणुं अने बंने वच्चेनी अन्य समस्त प्रकारनी योनिओ पण अनंतवार प्राप्त करी छे, तेथी अे पदवीओमांथी कोई पण पदवी मारा माटे अपूर्व नथी; किंतु मोक्षपदने आपनार सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्रना

अैक्यनी पदवी जे अपूर्व छे ते हजी सुधी मळी नथी, तेथी हे देव ! मारी सविनय प्रार्थना छे के सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्-चारित्रनी पदवी ज पूर्ण करो.

भावार्थ :—यद्यपि, संसारमां इन्द्र आदि पदवीओ छे ते, समस्त पदवीओ पण में प्राप्त करी लीधी छे; किंतु हे भगवान ! जे सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप पदवी सर्वोत्कृष्ट मोक्षरूप सुख आपनार छे ते में हजी सुधी प्राप्त करी नथी; तेथी विनयपूर्वक प्रार्थना छे के कृपा करी मने सम्यक्दर्शन, सम्यग्ज्ञान अने सम्यक्चारित्ररूपे पदवीनुं पूर्णतया प्रदान करो.

मुमुक्षुनी मोक्षप्राप्ति माटे दृढता :—

३२. अर्थ :—बाह्य (अतिशय आदि) तथा अभ्यंतर (केवलज्ञान, केवलदर्शन आदि) लक्ष्मीथी शोभित श्री वीरनाथ भगवाने (-वीरनंदी गुरुअे) पोताना प्रसन्नचित्तथी सर्वोच्च पदवीनी प्राप्ति अर्थे मारा चित्तमां उपदेशनी जे जमावट करी छे अर्थात् उपदेश दीधो छे, ते उपदेश पासे क्षणमात्रमां विनाशी अेवुं पृथ्वीनुं राज्य मने प्रिय नथी. ते वात तो दूर रही, परंतु हे प्रभो ! हे जिनेश ! ते उपदेश पासे त्रण लोकनुं राज्य पण मने प्रिय नथी.

भावार्थ :—यद्यपि संसारमां पृथ्वीनुं राज्य अने

त्रणे लोकना राज्यनी प्राप्ति अेक उत्तम वात गणाय छे, परंतु हे प्रभो ! श्री वीरनाथ भगवाने (-वीरनंदी गुरुअे) प्रसन्नचित्ते मने जे उपदेश आप्यो छे ते उपदेश प्रत्येना प्रेम पासे आ बंने वातो मने इष्ट लागती नथी, तेथी हुं आवा उपदेशनो ज प्रेमी छुं.

३३. अर्थ :—श्रद्धाथी जेनुं शरीर नम्रीभूत (नमेलुं) छे अेवो जे मनुष्य, श्री पद्मनंदि आचार्यरचित आलोचना नामनी कृतिने त्रणे (प्रातः, मध्याह्न, सायं) काल, श्री अर्हंत् प्रभु सामे भणे ते बुद्धिमान मनुष्य अेवा उच्च पदने प्राप्त थाय छे के जे पद मोटा मोटा मुनिओ चिरकालपर्यंत तप द्वारा घोर प्रयत्ने पामी शके छे.

भावार्थ :—जे मनुष्य (स्वभावना भान सहित) प्रातःकाळ, मध्याह्नकाळ अने सायंकाळ–त्रणे काल श्री अरहंत-देव सामे आलोचनानो पाठ करे छे ते शीघ्र मोक्ष प्राप्त करे छे, तेथी मोक्षाभिलाषीओअे श्री अरहंतदेव सामे श्री पद्मनंदि आचार्य द्वारा रचायेली आलोचना नामनी कृतिनो पाठ त्रणे काळ अवश्यमेव करवो जोईअे.

इति आलोचना अधिकार समाप्त.

आलोचना पाठ

वन्दौं पांचों परमगुरु, चौबीसों जिनराज।
करुँ शुद्ध आलोचना, शुद्धि करन के काज।।1।।
सुनिये जिन अरज हमारी, हम दोष किये अति भारी।
तिनकी अब निवृत्ति काजा, तुम शरण लही जिनराजा।।2।।
इक वे ते चउ इन्द्री वा,मन रहित सहित जे जीवा।
तिनकी नहीं करुणा धारी, निरदइ ह्वै घात विचारी।।3।।
समरंभ समारंभ आरंभ, मन-वच-तन कीने प्रारंभ।
कृत कारित मोदन करिकैं, क्रोधादि चतुष्टय धरिकैं।।4।।
शत आठ जु इन भेदनतैं, अघ कीने परछेदनतैं।
तिनकी कहुँ कोलौं कहानी, तुम जानत केवलज्ञानी।।5।।
विपरीत एकांत विनय के, संशय अज्ञान कुनय के।
वश होय घोर अघ कीने, वचतैं नहीं जात कहीने।।6।।
कुगुरन की सेवा कीनी, केवल अदयाकरि भीनी।
या विधि मिथ्यात्व भ्रमायो, चहुणगतिमधि दोष उपायो।।7।।
हिंसा, पुनि झूठ जु चोरी, परवनिता सों दृग जोरि।
आरंभ परिग्रह भीनो, पन पाप जु या विधि कीनो।।8।।
सपरस रसना घ्रानन को, दृग कान विषय सेवन को।
बहु करम कीये मनमाने, कछु न्याय अन्याय न जाने।।9।।
फल पंच उदम्बर खाये, मधु माँस मद्य चित्त चाये।
नहीं अष्ट मूलगुण धारे, सेये कुविसन दुखकारे।।10।।
दुइबीस अभख जिन गाये, सो भी निशदिन भुंजाये।
कछु भेदाभेद न पायो, ज्यों त्यों करि उदय भरायो।।11।।
अनंतानुबंधी जु जानो, प्रत्याख्यान अप्रत्याख्यानो।
संज्वलन चौकड़ी गुनिये, सब भेद जु षोड़श सुनिये।।12।।

परिहास अरति रति रति शोग, भय ग्लानि तिवेद संजोग।
पनवीस जु भेद भये इम, इनके वश पाप किये हम।।13।।
निद्रावश शयन कराया, सुपने मधि दोष लगाया।
फिर जारि विषय वन धायो, नानाविध विषफल खायो।।14।।
आहार विहार निहारा, इनमें नहिं जतन विचारा।
बिनदेखे धरा उठाया, बिन शोधा भोजन खाया।।15।।
तब ही परमाद सतायो, बहुविधि विकल्प उपजायो।
कछु सुधि बुधि नाहिं रही है, मिथ्यामति छाय गई है।।16।।
मरजादा तुम ढिग लीनी, ताहू में दोष जु कीनी।
भिन-भिन अब कैसे कहिये, तुम ज्ञानविषै सब पइये।।17।।
हा हा मैं दुठ अपराधी, त्रस जीवन राशि विराधी।
थावर की जतन न कीनी, उर में करुणा नहिं लीनी।।18।।
पृथ्वी बहु खोद कराई, महलादिक जागाँ चिनाई।
बिन गाल्यो पुनि जल ढोल्यो, पंखातै पवन विलोल्यो।।19।।
हा हा मैं दुठ अपराधी, त्रस जीवन राशि विराधी।
थावर की जतन न कीनी, उर में करुणा नहिं लीनी।।18।।
पृथ्वी बहु खोद कराई, महलादिक जागाँ चिनाई।
बिन गाल्यो पुनि जल ढोल्यो, पंखातै पवन विलोल्यो।।19।।
हा हा मैं अदयाचारी, बहु हरित काय जु विदारी।
तामधि जीवन के खंदा, हम खाये धरि आनंदा।।20।।
हा हा परमाद बसाई, बिन देखे अगनि जलाई।
तामध्य जीव जे आये, तेहू परलोक सिधाये।।21।।
बींध्यो अन राति पिसायो, इंधन बिन सोधि जलायो।
झाडू ले जागाँ बुहारी, चींटी आदिक जीव विदारी।।22।।
जल छानि जिवानी कीनी, सोहू पुनि डारि जु दीनी।
नहिं जलथानक पहुँचाई, किरिया बिन पाप उपाई।।23।।

जल मल मोरिन गिरवायो, कृमि कुल बहुघात करायो।
नदियन बिच चीर धुवाये, कोसन के जीव मराये॥24॥
अन्नादिक शोध कराई, तामें जु जीव निसराई।
तिनका नहिं जतन करायो, गलियारे धूप डरायो॥25॥
पुनि द्रव्य कमावन काजे, बहु आरंभ हिंसा साजे।
किये तिसनावश अघ भारी, करुना नहि रंच विचारी॥26॥
इत्यादिक पाप अनंता, हम कीने श्री भगवंता।
संतति चिरकाल उपाई, बानीतैं कहिय न जाई॥27॥
ताको जु उदय अब आयो, नानाविध मोहि सतायो।
फल भुंजत जिय दुख पावे, वचतैं कैसे करि गावै॥28॥
तुम जानत केवलज्ञानी, दुख दूर करो शिवथानी।
हम तो तुम शरन लही है, जिन तारन विरद सही है॥29॥
इक गांवपति जो होवे, सो भी दुखिया दुख खोवे।
तुम तीन भुवन के स्वामी, दुख मेटो अन्तरजामी॥30॥
द्रौपदी को चीर बढायो, सीता प्रति कमल रचायो।
अंजन से किये अकामी, दुख मेट्यो अन्तरजामी॥31॥
मेरे अवगुन न चितारो, प्रभु अपनो विरद निहारो।
सब दोष रहित करि स्वामी, दुःख मेटो अन्तरजामी॥32॥
इन्द्रादिक पद नहिं चाहूँ, विषयन में नाहिं लुभाऊँ।
रागादिक दोष हरिजे, परमातम निज पद दीजे॥33॥
दोष रहित जिनदेवजी, निजपद दीजे मोय।
सब जीवन के सुख बड़े, आनंद मंगल होय॥34॥
अनुभव माणिक पारखी, 'जौहरी' आप जिनन्द।
ये ही वर मोहि दीजिये, चरन शरन आनन्द॥35॥

❀ ❀ ❀

અનુભૂતિ તીર્થ મહાન, સ્વર્ણપુરી સોહે
યહ કહાનગુરુ વરદાન, મંગલ મુક્તિ મિલે.